कालिदास पर्व : मेघदूत
(अध्यक्षीय व्याख्यान)

प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डे

कालिदास का भारतीय संस्कृति में क्या महत्व है इस बात पर श्री अरविन्द के वचन याद आते हैं। उन्होंने अपने संक्षिप्त निबन्ध कालिदास में लिखा है कि यदि भारतीय संस्कृति का सब कुछ लुप्त हो जाय और केवल तीन ग्रन्थ शेष रहें, व्यास, वाल्मीकि, और कालिदास, तो भी संस्कृति का सम्पूर्ण परिचय मिल सकता है। व्यास के महाभारत में भारतीय प्रज्ञा का सर्वोत्कृष्ट दर्शन है, वाल्मीकि में शील का और कालिदास में भारतीय aesthetic दृष्टि का। यह aesthetic दृष्टि क्या है और किस तरह से कालिदास में यह प्रतिबिम्बित है, यह विचारणीय है।

वास्तव में aesthetic शब्द का जो विशेष आधुनिक प्रयोग है, यह 18वीं सदी के अन्त में Van gartin की प्रसिद्ध पुस्तक से आरम्भ हुआ। उसका आशय यह था कि सौन्दर्य एक स्वतंत्र मूल्य है। प्राचीन पश्चिमी परम्परा में यह माना जाता था कि सौन्दर्य और सत् यह दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। प्लेटो में यही दृष्टि है कि तावाय और तात्कालीन दोनों जोड़ देते हैं और मध्यकालीन पश्चिमी चिंतन में सौन्दर्य और ज्ञान का प्रबोध सत् की महिमा, ये तीनों जुड़े हुए माध्यम माने जाते हैं। आधुनिक दृष्टि के इस प्रसंग के प्रतिपादक Vangartin ने कहा कि सौन्दर्य एक स्वयं स्वतंत्र विमोह है। बल्कि इसी दृष्टि से कुछ विद्वानों ने जिन्होंने वैदिक काव्य पर लिखा है, उनका विचार है कि वैदिक काव्य में सौन्दर्य की भावना है ही नहीं, क्योंकि सौन्दर्य स्वतंत्र गुण के रूप में वहां नहीं है। वहां वह अन्य गुणों के साथ मिला जुला है। इस पर बहुत प्रसिद्ध निबन्ध है। किन्तु जो भारतीय अलंकार शास्त्र हैं, उसमें जो सौन्दर्य की काव्यानुभूति है, उसको एक स्वतंत्र गुण ही माना जाता है। वह एक ऐसा मूल्य है कि स्वयं और अन्य मूल्यों से जुड़ा हुआ नहीं है। लेकिन कालिदास में, जब हम कहते हैं कि उसमें भारतीय परम्परा का aesthetic dimension सबसे अधिक विद्यमान है, तो क्या हमारा अर्थ यह है कि कालिदास में इस प्रकार की भावना है जो कि अन्य मूल्यों से असम्पृक्त है। स्वयं कालिदास इसे नहीं मानते, वह बराबर यह प्रश्न करते हैं कि क्या रूप सत्-निरपेक्ष हो सकता है? अनेक स्थलों पर यह प्रश्न उन्होंने किया है कि औचित्य, शील, सत् इसके साथ रूप अलग नहीं हो सकता। रूप का मिथ्या प्रयोग नहीं हो सकता है। मिथ्या प्रयोग के अयोग्य है रूप। अर्थात् उनके मन में यह प्रश्न था कि क्या रूप इस प्रकार की बात है जो कि अपने आप में देखकर मनुष्य उसमें आनन्द ले और उसके हेतु, फल, परिणाम और अनुसंगियों की ओर ध्यान जाये ही न।

इस प्रसंग में मेघदूत की चर्चा जिन लोगों ने की है, उनमें राम विलास शर्मा की जो अन्तिम पुस्तक है। उसमें भारतीय संस्कृति के ऊपर निबन्धों का संग्रह है। इसमें कालिदास की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा है कि मेघदूत में कालिदास की दृष्टि प्रेम को ठीक नहीं समझती। विषयिता से वह सम्पृक्त है। वह विषय वासना को ही प्रेम मानते हैं। और प्राय: इस तरह की बात अन्य लेखकों ने भी कही है।

कालिदास की भावना प्रेम के बारे में क्या थी, इस पर स्वयं कालिदास ने बहुत कहा है और मेघदूत में प्रेम का प्रकाश विरह के द्वारा किया गया है।

स्नेहानाहु: किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा: प्रेमराशी भवन्ति। मेघ.2।55

अन्तिम निष्कर्ष मेघदूत का यही है। यहां प्रेम शब्द ही कहा गया है। अमरकोश में प्रेम व कामविलास पृथक्-पृथक् हैं। किन्तु यहां दोनों जुड़े हुए हैं। आरम्भ है काम से ही। वहां पर काम के रूप में ही परिचय दिया है। मेघदूत में भी यह बात नि:सन्देह है कि यद्यपि यक्ष का अपनी प्रियतमा के लिए प्रेम देहोत्तीर्ण नहीं है, ऐसा प्रेम नहीं है जिसमें रति का भाव न हो। किन्तु ऐसा भी प्रेम नहीं है जो कि विरह को न सह सके। सारे विश्व के पदार्थों को देखकर भी यक्ष सन्तुष्ट नहीं है कि कहीं यह प्रियतमा की छवि मिलती है। यह स्थिति काम की कभी भी नहीं होती। काम और प्रेम का मुख्य भेद ही इसी बात में होता है कि प्रेम प्रेम-पात्र के स्वरूप और छवि से अंकित होता है। उसे अलग नहीं किया जा सकता। जब कि काम उसमें निर्विषयी होता है। एक वैज्ञानिक ने एक कथा लिखी थी जिसमें एक दृष्टान्त दिया कि कोई व्यक्ति घर से निकला, वर्षा बहुत हो रही थी न्यूयार्क में। एक जगह रुका, वहीं पर एक महिला भी थी। दोनों साथ गये शाम साथ बितायी। फिर घर लौट कर जब आया तो उसने कहा कि नाम ही पता नहीं कि कौन महिला थी। माने वह विशुद्ध काम की स्थिति है, जहां पर काम को अपने विषय के स्वरूप से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब कि प्रेम में ठीक उल्टी बात है कि प्रेम हो, प्रेम पात्र से मिले ही न जीवन भर, तो भी प्रेम बना रहता है, परिपाक बढ़ता रहता है। यही कारण है कि पूर्व राग सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है रति का। पूर्वराग का महत्व ही इसी बात का है कि यह प्रेम राग न केवल विरहराग है, अपितु विरह से उपजित होता है। ऐसे ही कुमारसंभव में जव पार्वती शिव को अपने रूप के द्वारा और काम की सहायता से मोहित करना चाहती हैं, तव वह तो घातक हो जाता है। शाकुन्तल में जो पहले विशुद्ध भोगप्रवण प्रेम है उसका यही परिणाम है कि शकुंतला को राजा छोड़ ही देता है, पहचानता ही नहीं। शाप कहिए लेकिन यह शाप बार-बार आता है कालिदास में। शाकुंतल में भी है, मेघदूत में भी है, रघुवंश में शाप की चर्चा है। यह कोई आगन्तुक शाप तो नहीं होना चाहिए। आगन्तुक हो तो उस काव्य में महिमा ही क्या है उसकी! लेकिन यह शाप तो ऐसा ही है जो मनुष्य के स्वभाव से जुड़ा हुआ है। जैसे ईसाई लोग मानते हैं कि एक जन्मसिद्ध पाप होता है, इसके कारण मनुष्य दु:ख भोगता है। तो कुछ प्रकृति सिद्ध प्रमाद है, वही शाप है, जो कि मनुष्य का दिया हुआ नहीं है। मनुष्येतर क्षेत्र से आया हुआ पाप है। अर्थात् वह मनुष्य ही की स्थिति होती तो प्रकृति में यह दोष न होता। पशुओं में दोष नहीं होता है। लेकिन मनुष्य तो पशु और देवता के बीच की स्थिति है, जो अपने स्तर से ऊपर उठना चाहता है। उसके लिए यह प्रकृति का अभिशाप है कि उसमें प्रारम्भिक अवस्था में, जिस प्रकार काव्य में तृष्णा का उदय होता है वह अज्ञान प्रसूत है उसका विशोधन हुए बिना वास्तविक पुरुषार्थ को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसीलिए शाकुंतल में जो पुरुषार्थ की प्राप्ति है, वह इस लोक में है ही नहीं, सिद्ध लोक में है। अर्थात् इस लोक में मृगया का क्षेत्र है। जहां पर पशु के पीछे दौड़ रहा है राजा, किन्तु उसका परिणाम दु:खद है। वह दु:ख दोनों को होता है, शकुन्तला को भी, राजा को भी। राजा सोचता है कि यह क्या है—

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु, क्लिष्टं नु तावत् फलमेवपुण्यम् । अभि० शा० 6.10

एक माया अविद्यामूलक है । उसको शुद्ध हुए बिना वास्तविक प्रेमपात्र की उपलब्धि हो नहीं सकती।

"युष्मदस्मत् प्रत्ययगोचरयो: विषयविषयिणस्तम: प्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयो:
ब्रह्मसूत्र पर शांकर भाष्य 1.1.1

क्योंकि मनुष्य अविद्या के वश में है और अविद्या का प्रथम परिणाम काम ही होता है। यह तो सभी दर्शनों में सिद्ध है कि अविद्या से ही काम उत्पन्न होता है। काम से ही प्रमाद होता है और बिना इस प्रमाद को दूर किये हुए, वास्तविक पुरुषार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती। वासुदेव शरण अग्रवाल जी ने एक निबन्ध लिखा था, जिसमें बहुत सी बातें हैं किन्तु एक विशेष बात है कि मेघ स्वयं एक प्रतीक है, इसीलिए वह मेघ जो खाली सन्निपात मात्र है भौतिक पदार्थों का, वह सन्देशार्थ के लिए पटु नहीं है, उसके लिए सफल नहीं हो सकता। जो सफल होगा वह तो कामरूप है, प्रकृति पुरुषस्य कामरूपम्....। जो मन की कल्पनाशक्ति है, मन को इन्द्र के साथ तुलना की है। इन्द्र की ही सब इन्द्रियां होती हैं और मन ही इन्द्र है, इन्द्रियों का राजा और उसका जो कामरूप है, उसकी जो शक्ति है, जो कल्पनात्मक शक्ति विषय तक पहुँचाती है, उसी का प्रतीक मेघ है। वह कवि की कल्पना ही है, जो सन्देश को ले जा रही है। वह कल्पना जो सारे जगत् का सौन्दर्य देख रही है और कहीं अपनी प्रियतमा का सौन्दर्य नहीं देख पाती है। उसके आभास में एक सी है सब जगह। सारे प्रकृति के सौन्दर्य उसके प्रियतमा के सौन्दर्य के आभास हैं, अधूरे प्रतिबिम्ब हैं। यह देखने वाली उसकी कल्पना है। चूंकि वह जहां है, वहां से बहुत दूर जाना है।

वेद में तो मन को यक्ष ही कहा गया है। यहां पर दो हिस्सों में बँट गया है, एक जो कि भेज रहा है सन्देश, जो कि स्वयं प्रेक्षु है, साधक है और दूसरा जो साधन है। वस्तुत: जिस सौन्दर्य दृष्टि के कारण कालिदास न केवल प्रसिद्ध हैं, अपितु भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि रूप में बताये गये हैं, वह सौन्दर्य मात्र वह सौन्दर्य नहीं है जो कि कोई भी अप्रबुद्ध व्यक्ति इन्द्रियों के सहारे बाहरी जगत् में देख सकता है, अपितु वह सौन्दर्य आत्मसौन्दर्य है, चैतन्य का सौन्दर्य है जिसके लिए प्रबोध की आवश्यकता होती है। रस के बोध में भी यही होता है, जब तक हम वास्तविक बाहरी पदार्थों को ही अपना विषय मानते हैं, अपने लौकिक स्तर पर ही बने रहते हैं। लौकिक स्तर पर तो सभी राग-विराग से परिचित हैं, वह कवि नहीं बनते, न कवि के अनुभव से साक्षात्कार करते हैं। उसके लिए आवश्यक नहीं कि जो बाहरी जगत्, जो ठोस जगत् दिखता है, वह घुल जाय एक अत्यन्त सूक्ष्म भाव में। आलम्बन के रूप में विषय अपनी ठोस सत्ता द्रव्य को छोड़ देते हैं। आलम्बन लोकोत्तर होते ही हैं, विषय तो लौकिक होते ही हैं। जो लौकिक विषयों की लौकिकता, जो उनकी जो ठोस सत्ता है, जिसमें लौकिक प्राणी बंधे रहते हैं उनसे आगे बढ़कर, उनमें अन्तर्निहित बीज रूप से स्थित जो उनका भाव है, जिस भाव से विषयों की सृष्टि होती है, उस भाव तक पहुंच सकते हैं, जहां से रस की भी प्राप्ति कर सकते हैं। उसके लिए केवल बाहरी पदार्थों से ही नहीं, अपने आप से भी मुक्ति की आवश्यकता है। हम जो स्वयं एक विशिष्ट विषय के रूप में विद्यमान हैं अन्य विषयों के बीच में।

जहां मात्र विषय साम्राज्य है जिसमें एक विषय हम हैं और अन्य विषय हैं, उनके पारस्परिक संबन्ध प्रतिक्रियाएं हैं। यह विषय जो लौकिक स्तर है, इसमें भौतिक भाव भी सम्भव नहीं है। इसमें मनोवैज्ञानिक भाव या संवेग तो होते ही हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिक भाव या संवेग नहीं है। भाव होने के लिए साधारणीकृत होना पड़ता है, लोकोत्तर होना पड़ता है उनको, अर्थात् उनकी जो लौकिक ठोस सत्ता है और जो व्यक्तिगत सत्ता है, चाहे वह विषयी की हो या विषय की हो, उनसे मुक्त हो जाना चाहिए उनको। तब उस भाव का पता चलता है, जिस भाव से यह विषय विषयी भेद के साथ यह ठोस जगत् पैदा हुआ है। यह एक प्रेम का भाव है, उसके अन्दर प्रेमी और प्रेम के विषय का बोध होता है। कितने प्रकार के प्रेमी सम्भव हुए हैं, कितने प्रकार के प्रेमपात्र सम्भव हैं, असंख्य हैं और सृष्टि में वे सारे भेद अलग-अलग करके मूर्त होते हैं। और फिर वे भेद एक दूसरे से निकट आकर क्रमश: अपने मूलभूत सूक्ष्मभाव तक पहुंचने का प्रयत्न करते हैं। सदा सफल नहीं भी होते। लोक में बहुत से उपाय हैं, संस्कारों के, अनेक प्रकार के

उपाय हैं जिनसे लोग चाहते हैं कि मनुष्य केवल बाहरी दृष्टि को छोड़कर उसके अन्तस्सार को पकड़ सके। सर्वोत्कृष्ट उपाय तो काव्य और कला ही है जिसमें यदि मनुष्य प्रवेश कर सके सहृदयता के कारण, जो सबमें रहता नहीं है पूरी तरह से, तब वह किस प्रकार उसके और उसके परिचित वास्तविक जगत् से भिन्न उन दोनों के सार का जो प्राणभूत तत्व है, वह भाव है, जिसमें वह अपने को भूल जाता है, बाहरी विषय भूल जाते हैं। वही रस की उपलब्धि starting point है। यहां भाव आवरण रह जाता है, सूक्ष्म रूप से, पारदर्शी रूप से भाव हटता नहीं है, लेकिन उसके पीछे जो चैतन्य सत्ता है, उसकी प्रतीति होने लगती है। वही आनन्द की प्रतीति है, उसी प्रतीति से विभिन्न दिशाओं में सुख की प्रतीति, दु:ख की प्रतीति भी होती है।

....खिस्ते ने बहुत पहले एक लेख लिखा था, उन्होंने कहा कि कालिदास का दर्शन क्या है, कालिदास का दर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शन है। उन्होंने कहा था कि स्वरूप की पहचान अभिज्ञान यही वास्तविक बात है, सारा जगत् आभासमात्र है। आभास अर्थात् चैतन्य ही कुछ अंश में, कुछ न्यूनता के साथ और सारा अनुभव भी ऐसा ही होता है कि जो आभास है बाहरी वह, विषयी रूपी जो आभास है, उसके साथ मिल जाता है। विषयी की अपनी सत्ता हट जाती है। वही आभास फिर अन्तर्भूत हो जाने से अर्थात् आत्मरूप विमृष्ट होने से, प्रत्यविमर्श कहते हैं, उसके द्वारा सभी अनुभव होते हैं, तो प्रत्येक अनुभव में जो लौकिक आभास है, उससे थोड़ा ऊपर उठ जाते हैं, जब अनुभव के स्तर पर पहुंचते हैं। इसी को कला मानना चाहिए।

तो इसीलिए काव्य में जब उपस्थित हो तो जगत् से विरोध नहीं होता, चेतन से विरोध अवश्य है। और दोनों को जोड़ना अविद्या है, किन्तु वास्तव में अचेतन शब्द कुछ है ही नहीं। अचेतन तो चेतनाधिष्ठित ही रहता है। अचेतन की सारी बातों को चेतन में घुला देना, यही तो काव्य में होता है। जो अचेतन है, वह अचेतन ही बनकर रह जाता है, उसी से चेतन की प्रतीति होती है। इसको हम चेतन कहते हैं अपने आपको तो पूरा चेतन नहीं समझते। अपने आपको आधा चेतन ही मानते हैं। वह भी एक भ्रान्ति है। चेतन की ही प्रतीति है। चेतन प्रीति नहीं है। किन्तु उस अचेतन में चेतन का आरोप रहता है। इनका यह आरोप मिथ्यारोप न हो, सदारोप हो, यह लगे कि अचेतन में चेतन ही प्रतीतमान है, और चेतन के ही जो लुप्त अंश है, केवल साक्ष्यता नहीं, अनेक गुण, अनन्त गुण-सर्व रस: सर्व गन्ध:, यह जो प्रतीति है, यही उसकी पूर्णतया प्रतीति है। कालिदास की जो जीवन दृष्टि है, यह उसी प्रकार की है। कालिदास में यह भेद देखना कि उनमें विषय जगत् के सौन्दर्य का ही विशेष रूप से अनुराग है, उसी प्रकार का सौन्दर्य है। यह एक भ्रान्ति सी है। यह द्वैत ही बराबर हटता जाता है। इसमें सारे प्रत्यक्ष जगत् है। वह वैश्वत्व नहीं है। यह जो अद्वैतवाद है, ऐसा अद्वैतवाद नहीं जो कि जगत् को मिथ्या करके विराग का हेतु बताता है, ऐसा अद्वैतवाद जो कि सब कुछ को शैव मानते हुए, शिवतनु मानते हुए उनके अन्दर जो रसात्मक तत्व है, उसका अनुभव करना चाहता है। उनकी सौन्दर्य दृष्टि रूप औचित्य और औचित्य के पीछे तप से विशुद्ध होकर वास्तव में शिव सामरस्य की ओर ही बढ़ता है। वही वास्तविक रूप है। वह रूप से एक बाहरी आवरण न होकर उसके पारदर्शी है, उस बात के लिए जिसका वह रूप है। रूप तो खाली एक प्रतिरूप है। प्रतीति मात्र है, सारी भ्रान्ति इसी बात की है। भिन्न भिन्न रूपों को सत्ताएं स्वयं पृथक् पृथक् मान लेती हैं, यही सत्य है और इसके अतिरिक्त जो कल्पना है, अमूर्त है, व्यावृत्त पदार्थ

है, उसके लिए ज्ञान का दर्शन चाहिए और नहीं तो निर्गुण है, कुछ पता नहीं है उसके बारे में। ऐसे नहीं। इस दृष्टि में जो निर्गुण है, वही सगुण है। जो स्रष्टा है, वही सद्रूप में है। तदेव सृष्टवा, तदेव ... प्रविशति। यही वैदिक सिद्धान्त है कि सृष्टि के बाद पदार्थ में आत्मा ही प्रविष्ट है, इससे भिन्न है ही नहीं कुछ। बाकी सब तो मिथ्या है, वही सत्य है। बाकी सब वह जो कल्पना से वास्तव मान लेते हैं...

... कि सारा सत्य है। उनके काव्य में ... यह पारदर्शी हो जाते हैं। यही कारण है कि खाली प्रकृति के वर्णन में वह सौन्दर्य उद्दीपन करता है। किसका? यह कहना कि प्रकृति का सौन्दर्य उद्दीपन करता है द्रष्टा के उस भाव को जिसका विषय आलम्बन प्रकृति से अलग है । कहीं और है, यह बात कुछ जंचती नहीं।

कालिदास को जब मेघदूत में प्रकृति का सौन्दर्य दीखता है, उसका आलम्बन क्या है उसमें उपमा के द्वारा, श्लेष के द्वारा, संस्कृति के द्वारा उससे अतिरिक्त कोई विषय है क्या? ऐसा मानने पर उसका महत्व घट जाता है। इसीलिए प्रकृति के वर्णन में बाह्य सौन्दर्य वह क्या है कि चाहे जड़ प्रकृति कहो, चाहे मनुष्य कहो, स्त्री कहो, लेकिन जो लक्ष्य का वर्णन हुआ है, वह जड़ का ही वर्णन हुआ है। जो लक्ष्य ही देखता है, वह उसके पीछे व्यक्ति को कहां देखता है? जो व्यक्ति नहीं देखता, उसको प्रेम प्राप्त ही नहीं है। चित्रकार जब चित्र बनाता है तो यह अवश्य... अब तो यह मानते हैं सब यह जरूरी नहीं कि जो चित्र बनाएं आप, उसका रूप अच्छा दीखना चाहिए, यह कोई जरूरी नहीं। कौन सा आकाश सुन्दर है कैसी नाक, कैसी आंख, इसका कोई प्रमाण है कहीं सब युगों में चित्रकारों ने, शिल्पकारों ने प्रमाण स्थापित करने की चेष्टा की है, किन्तु उन स्थापनाओं का महत्व केवल उस सम्प्रदाय के अन्दर होता है, बाहर नहीं होता है और जहां सम्प्रदाय बदलते हैं, वह बदल जाता है। जो ऐसा चित्र है, जिसमें आसपास कोई चित्र नहीं है, उसमें भी सौन्दर्य है। क्योंकि उसमें किसका चित्र है, आप यह देखिए कि कोई वृद्धा है, कुरूप स्त्री है, उसका चित्र है। सौन्दर्य उसमें नहीं होता? उसमें भी होता है। उसमें वह सौन्दर्य नहीं होता जो किसी और में होना चाहिए, किसी अवस्था में, अवस्थान्तर में। सब में एक ही रूप होना चाहिए क्या? तो यह सोचने की बात है।

इलियट ने जो वर्णन आरम्भ किया तो यही किया कि दरवाजा खटखटाता है, अखबार फेंक जाता है... यह सब बातें इनसे प्रात: काल होता है। वह भी सुन्दर है। तो सौन्दर्य इसमें नहीं रहता कि आप क्या बात कर रहे हैं, लेकिन इस बात से क्या ध्वनि हो रही है, आपके मन में कौन सा भाव उदित हो रहा है, इसमें सौन्दर्य होता है। इनका मन सिर्फ वहीं उदबुद्ध होता है, जहां वह रूप वर्णन पाते हैं या रूढ़ चित्र देखते हैं। वे गहराई से नहीं देखते हैं। रूढ़ि का दोष ही है कि कभी किसी ने नयी चीज देखी, उसने कहा कि भौंहों को कमानी की तरह से बनायेंगे। वास्तव में कहीं कमानी भौंहों की तरह नहीं होती है। बनायी जा सकती है, अकृत्रिम रूप से, बात दूसरी है। लेकिन जिसने ऐसा बनाया, वह आविष्कार था। वह आविष्कार सबके अनुकरणीय थोड़े ही है। न यह सारे विश्व की महिलाओं के लिए प्रतिमान बना हुआ है। यह किसी को पता नहीं है कि ईश्वर ने कौन सा प्रतिमान बनाया हुआ है। लेकिन जो यह वर्णन है, प्रकृति का सौन्दर्य वर्णन है चाहे वह प्राकृतिक सौन्दर्य के हों, चाहे मानव सौन्दर्य के हों, उनको रूढ़ वर्णन में न डाल देना चाहिए। यह न मानना चाहिए कि उनमें सौन्दर्य की अनुभूति से भी उसका कारण है, यह वर्णन प्रसिद्ध प्रतिमान और रूढ़ियों के अनुकूल है। यह तो दोष है, गुण नहीं है।

यदि कालिदास के मेघदूत में प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन मन को भाता है तो इसलिए कि कालिदास सारी प्रकृति में एक चेतना अन्तर्व्याप्त देखते हैं। यह केन्द्र बिन्दु है। वह सर्वत्र चैतन्य पदार्थ ही देखते हैं, चाहे नदी हो, चाहे मेघ का गर्जन हो। सबको वह एक ही चेतन व्यापार के रूप में देखते हैं। यही उसकी विशेषता है। यही बात जो अन्त में स्पष्ट हो जाती है कि 'तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्व बिम्बाधरोष्ठी ...' (मेघ **2.22**) उसमें अर्थ, तात्पर्य क्या है? यक्ष यह कह रहा है कि उसकी प्रियतमा इन सबसे अधिक सुन्दर है। वह कहते हैं कि अलग-अलग मिलते हैं, एक में नहीं मिलते हैं यह। एक में कैसे मिलेंगे प्रश्न है यह। कितनी चीजें क्यों मिलेंगी? विश्व में प्रकृति की छटा हैं सौन्दर्य, सब जहां समुच्चित हैं, वहीं तो वास्तव में प्रियतम का रूप। कालिदास की जो सौन्दर्यदृष्टि है, उसमें एक रसाद्वैतवाद दीखता है। मेघदूत में जो यक्ष है, जो उसके विलास है, जो उसका दूत है, जो सन्देशार्थ का विषय है, वे सब भी एक निरन्तर और व्यापक चेतना के रूप में देखा जा सकता है।